बहुभाषिता पूरी पाठ्यचर्या के लिए महत्वपूर्ण है

रमाकान्त अग्निहोत्री

ज्ञान के सभी क्षेत्रों में भाषा की एक केन्द्रीय भूमिका होती है। यह बात स्पष्ट होने के बावजूद शिक्षा के अधिकतर कार्यक्रम इस तथ्य पर ध्यान तक नहीं देते। भाषा को केवल संप्रेषण के साधन के तौर पर देखा जाता है और भाषा को इस तरह से देखने की समझ ने वास्तव में बहुत नुकसान पहुंचाया है।

जैसा कि एड्वर्ड सपीर (1921) ने बहुत पहले कहा था, भाषा एक एलिवेटर या लिफ्ट, को ताकत देने की सामर्थ्य रखती है मगर हम आम तौर पर इसे दरवाजे पर लगी घण्टी बजाने भर के काम लेते हैं। अधिकांश लोग ज्यादातर समय इसे केवल गपशप या सामाजिक स्तर पर भावनात्मक और बेजान किस्म के संप्रेषण के लिए इस्तेमाल करते हैं। इसलिए शायद यह स्वाभाविक ही है कि ज्ञान के हस्तांतरण और निर्माण में इसके अत्यधिक महत्व को हम नजरंदाज करते हैं।

हालांकि हमारी शैक्षिक व्यवस्थाओं में दो-तीन भाषाएं सीखने की गुंजाइश होती है फिर भी स्कूल की पूरी पाठ्यचर्या में मौजूद भाषा की भूमिका पर हमारा ध्यान शायद ही कभी जाता है। जो लोग इस बात की ओर ध्यान देते हैं, वे भी इसे मोटे तौर पर बस भाषा को बेहतर तरीके से सीखने की एक वैकल्पिक तकनीक के रूप में देखते हैं और इस बारे में दलील यह दी जाती है कि ऐसा करने से लक्षित भाषा के प्रयोग को सभी विषयों में सुनिश्चित किया जा सकेगा।

उम्मीद यह की जाती है कि इस नजरिए के चलते मौखिक दक्षताएं, विकसित होती हुई साक्षरता तथा पढ़ने और लिखने की योग्यताएं बेहतर होंगी। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, कोई एक भाषा दांव पर नहीं होती है, न ही हमारी मूल चिन्ता किसी एक विषय को लेकर है। पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की मौजूदगी को असल में तो एक ऐसी वैकल्पिक शिक्षा पद्धती के तौर पर देखा जाना चाहिए जिसके होने से कई भाषाओं में दक्षता को और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की विषयवस्तु को समझ पाना सुनिश्चित किया जा सकता है।

ज्ञान के निर्माण, भाषाई दक्षता में विकास, संज्ञानात्मक लचीलेपन और सामाजिक सहिष्णुता की प्रक्रिया में बहुभाषिता व पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की मौजूदगी इन दोनों नजरियों को बारंबार उभर कर सामने आने वाली थीम के तौर पर हमारे सामने आना चाहिए। हम यह भूल जाते हैं कि सब कक्षाओं में बच्चे अपनी-अपनी विभिन्न वाणियों के साथ आते हैं, उनकी मौखिक अभिव्यक्ति के रंगपटल में भी भिन्नता होती है और वे सब अपने साथ ज्ञान की कुछ विशेष व्यवस्थाएं स्कूल में लेकर आते हैं। इसलिए बहुभाषिता और बच्चे में मौजूद सम्भावनाओं को पहचानना बहुत आवश्यक हो जाता है। इन तथ्यों को अनदेखा करने वाला कोई भी शैक्षिक कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान की वे सब नई प्रणालियां जिन्हें हम चाहते हैं कि बच्चे हासिल करें, भाषा के कुछ खास स्वर-विस्तारों में संहिताबद्ध होती हैं; भले ही उनका वाक्य-विन्यास एक ही हो। भाषाओं में दक्षताओं के विकास के लिए बढ़ती जटिलता वाले वाक्य-विन्यासों के साझा पैटर्नों तथा अत्यधिक भिन्नता वाले शब्दों, वाक्यांशों और मुहावरों की जरूरत होती है। कई प्रकार की भाषाओं में दक्षता हासिल करने, उनके स्वर-विस्तारों में दक्षता हासिल करने तथा नए ज्ञान को हासिल करने के लिए जरूरी है कि पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की मौजूदगी के महत्व को समझा जाए।

पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की मौजूदगी होने के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि स्कूल के शिक्षक इस पद्धति के तहत चलने वाले कामों की योजना बनाएं। उन्हें नियमित तौर पर मिलना भी होगा मसलन, महीने में एक बार। मूल विचार यह है कि सभी विषयों में वाक्य-विन्यास की बढ़ती हुई जटिलता को तथा शब्दकोश और विषय-विशेष संबंधी स्वर-विस्तारों को सामूहिक तौर पर सुदृढ़ किया जाए।

उदाहरण के लिए, मान लें कि वाक्य-विन्यास के स्तर पर सशर्त वाक्यांशों (कंडीशनल क्लॉजेज) की संरचना पर ध्यान केन्द्रित करना है ऐसे में सामाजिक-विज्ञान, विज्ञान या गणित के शिक्षक के लिए भी कक्षा में इन संरचनाओं को सुदृढ़ करवाना मुश्किल नहीं होना चाहिए। गणित का उदाहरण तो सच में दिलचस्प है क्योंकि यह तो स्वयं में एक भाषा है। इसके बावजूद इन्सान द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली मूल भाषा के बिना गणित-शिक्षण के बारे में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

"अधिकतर लोग यह भूल जाते हैं कि सभी भाषाएं बुनियादी तौर पर मिश्रित होती हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी अपनी संरचना और शब्दकोश जर्मन, लातिनी, फ्रांसिसी, यूनानी, हिन्दुस्तानी, अरबी और फारसी आदि स्रोतों से उधार लेती है और ये सब भाषाएं आगे किसी अन्य भाषा से बहुत कुछ उधार लेती हैं आदि आदि।

... भाषागत दक्षता और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों द्वारा एक-दूसरे को उर्वर करने की प्रक्रिया से भाषा के ज्ञान व उपयोग की तथा विभिन्न विषयों के अवधारणात्मक संरचनाओं की समझ पक्के तौर पर बढ़ती है। व्यवहारवादी सिद्धांत उत्प्रेरण-प्रतिक्रिया तथा सुदृढ़ीकरण के सांचों के इर्द-गिर्द काम करते थे और इनमें बच्चे की रचनात्मकता के लिए बहुत कम गुंजाइश रहती थी।"

सभी नए शब्द, वाक्यांश, मुहावरे और कहावतें अलगाव में नहीं बल्कि किसी विषयवस्तु के संदर्भ में सीखे जाते हैं। भाषा पर ध्यान केन्द्रित नहीं होने के बावजूद भाषा में दक्षता स्वतः ही बढ़ती है। ध्यान हमेशा संदेश पर होना चाहिए। जब किसी कक्षा में उपलब्ध सभी भाषाएं व सम्पूर्ण विषयवस्तु एक-दूसरे को उर्वर बनाएंगे और उनका परस्पर मेल होगा, तो विषयवस्तु की समझ और भाषाई दक्षता, दोनों सुनिश्चित हो पाएंगे।

वास्तव में तो बच्चों के लिए यह सीखना बहुत ही विस्मयकारी होगा कि किस प्रकार एक ही शब्द या मुहावरे के अर्थ अलग-अलग विषयों में अलग-अलग हो सकते हैं। जैसे, विज्ञान तथा अन्य विषयों में अंग्रेजी के शब्द 'force' या 'mass' या 'gravity' का प्रयोग। इसका अर्थ यह भी है कि, यदि बच्चा लक्षित भाषा पर ध्यान दिए बिना भाषा-संकेतों की व्यवस्थाओं का मिश्रण करना, उनकी अदला-बदली करना, एक भाषा से दूसरी में आवाजाही, अधूरी भाषा-संकेत व्यवस्था का उपयोग करना, और अपनी परिचित भाषाओं का प्रयोग करना जैसे प्रदर्शन करता है तो इसका स्वागत किया जाना चाहिए। इन सब बातों को आम तौर पर 'मानकीय' होने के संदर्भ में तुच्छ माना जाता है।

अधिकतर लोग यह भूल जाते हैं कि सभी भाषाएं बुनियादी तौर पर मिश्रित होती हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी अपनी संरचना और शब्दकोश जर्मन, लातिनी, फ्रांसिसी, यूनानी, हिन्दुस्तानी, अरबी और फारसी आदि स्रोतों से उधार लेती है और ये सब भाषाएं आगे किसी अन्य भाषा से बहुत कुछ उधार लेती हैं आदि आदि।

संदेश के तौर पर भाषा

विभिन्न विषय-क्षेत्रों में संदेश के तौर पर भाषा का सबसे बेहतर प्रयोग तब होता है जब शिक्षक और बच्चे विभिन्न वाणियों और विचारों के प्रति संवेदनशील हों। भाषागत दक्षता और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों द्वारा एक-दूसरे को उर्वर करने की प्रक्रिया से भाषा के ज्ञान व उपयोग की तथा विभिन्न विषयों के अवधारणात्मक संरचनाओं की समझ पक्के तौर पर बढ़ती है। व्यवहारवादी सिद्धांत उत्प्रेरण-प्रतिक्रिया तथा सुदृढ़ीकरण के सांचों के इर्द-गिर्द काम करते थे और इनमें बच्चे की रचनात्मकता के लिए बहुत कम गुंजाइश रहती थी। आज सीखने-सिखाने के सभी संज्ञानात्मक सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया में स्वयं बच्चे द्वारा किए जाने वाले योगदान को पहचानते-समझते हैं।

सीखने-सिखाने के सभी संज्ञानात्मक सिद्धांत इस बात को स्वीकारते हैं कि भाषा से सार्थकता के साथ परिचय करवाए जाने की भूमिका पर काम होना चाहिए। हमारी शिक्षा व्यवस्था बहुत सी भाषाओं के होने या विषयवस्तु की अधिक मात्रा से ग्रस्त नहीं है। असल समस्या कोरी बोधहीनता - कुछ भी न समझ पाने के बोझ की है, जो इस वजह से पैदा होती है कि बच्चों के विचारों और उनकी आवाज को पाठ्यचर्या में कोई जगह नहीं मिलती है।

शुरुआत में शिक्षकों की ओर से इसके विरोध की आशा की जा सकती है क्योंकि उन्हें लग सकता है कि अपने विषय पढ़ाने के साथ-साथ उन्हें भाषा-शिक्षक की भूमिका में भी आना पड़ रहा है। किन्तु वे तो दरअसल अपने आप में भाषा-शिक्षक ही हैं। यहां तो यह सुझाया जा रहा है कि पाठ्यचर्या की योजना इस प्रकार बनाई जाए कि खास विषय की विषयवस्तु और कक्षा में उपलब्ध भाषाओं की विविधता एक-दूसरे को पोषित करें। यह प्रस्ताव किसी भी रूप में विषय-विशेष की अवधारणात्मक संरचना और विषयवस्तु की संरचनात्मक बनावट से संबंधित सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करता।

फर्मैट का अन्तिम प्रमेय (Fermat's last theorem), हार्डी और रामनुजम की गणितीय मुठभेड़ या बेन्जीन की संरचना की खोज में शामिल दिवास्वप्न या फिर गालिब या कबीर से सम्बद्ध समाजशास्त्र या इतिहास आदि ऐसे उदाहरण हैं जिनके संबंध में यह मानने का कोई कारण नहीं है कि इनके इर्द-गिर्द बुनी गई कहानियां, यात्रा करते हुए सभी विषय-क्षेत्रों में न पहुंचें, और ठीक से योजनाबद्ध विषयवस्तु व पूरी पाठ्यचर्या में गुंथी गई बहुभाषिता के माध्यम से प्रकट न हों।

लेखक परिचयः डी. फिल., भाषा विज्ञानः प्रोसेसेज ऑफ असिमिलेशनः ए सोशियोलिंगविस्टिक स्टेडी ऑफ सिक्ख चिल्ड्रन इन लीड्स (यार्क, यू.के.), एनसीईआरटी के भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के अध्यक्ष रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में लिंगिविस्टिक्स के प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित एवं संपादन से संबद्ध।

(यह लेख अंग्रेजी अखबार 'डेक्कवन हेराल्ड' से साभार)

भाषान्तरः रमणीक मोहन